Science Technology and Society

Science & Technology : Redefining the Emerging Modern Society

Department of Sociology
Indore Christian College, Indore

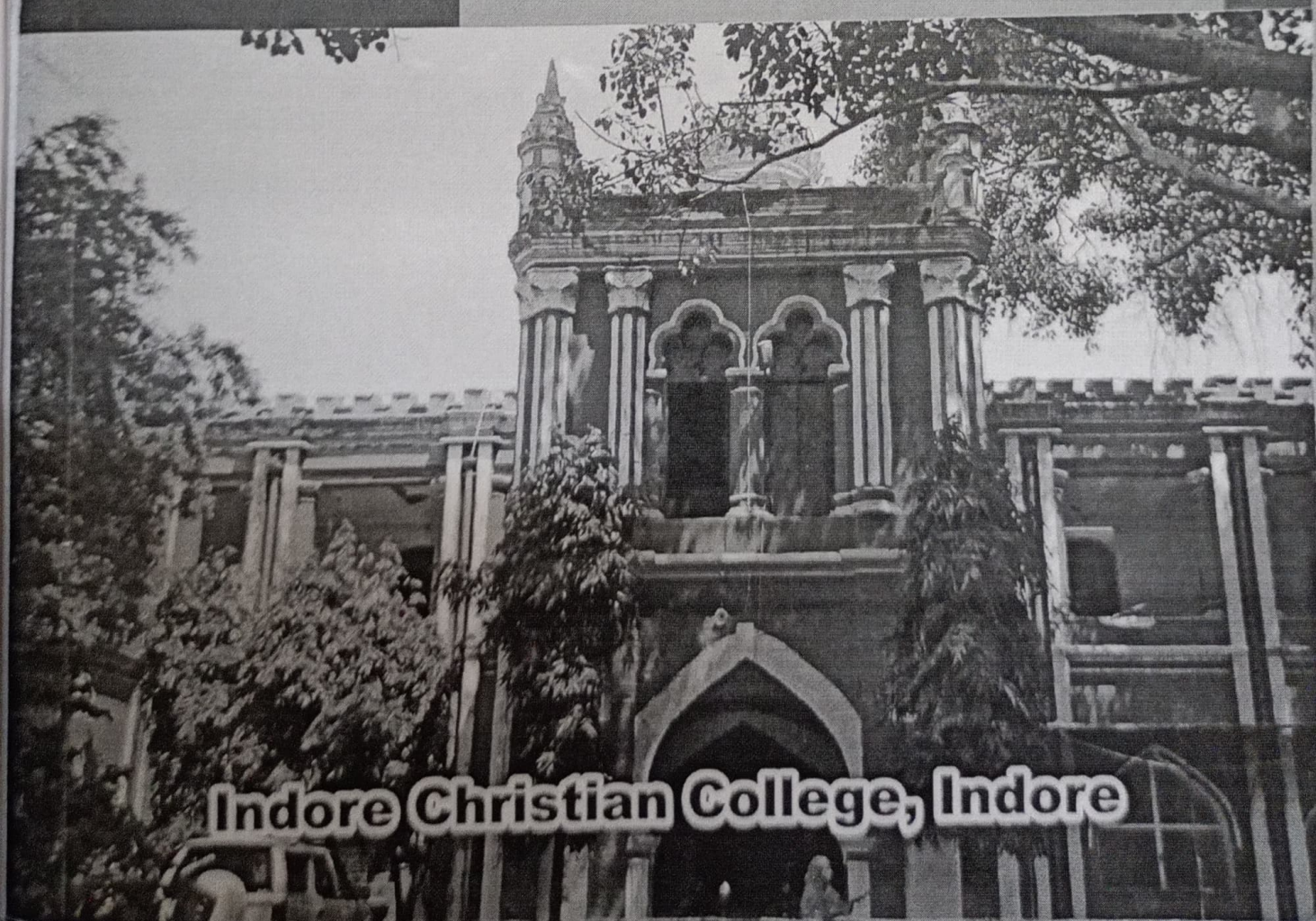

First Impression : 2019

© Editor

International Conference on Science Technology and Society

ISBN : 978-81-931424-2-7

Editorial Board

Prof. Yashpal Vyas Ph.D.
Prof. Deepak Dube Ph. D.
Prof. Pankaj Virmal Ph.D.
Prof. Ashok Sachdeva Ph.D.
Prof. Arvind Pal Ph.D.
Prof. Seema Vyas Ph.D.
Prof. Vijay Gambhir Ph.D.
Prof. Dinesh Khandelwal Ph.D.
Prof. Bharti Sharma Ph.D.
Prof. Saurabh Gurjar

Disclaimer

The opinions expressed in the book are the opinions of the authors. The Editor/ members of the Editorial Board or the Publishers are in no way responsible for the opinions expressed by the authors.

Publisher:
Gaurav Prakashan
University Road, Rewa M. P.

Department of Sociology
Indore Christian College
Indore – 452001
India.

Typeset by :
Rambabu Soni

Printed by :
Shrirang Offset, Indore
123, Devi Ahilya Marg, Jail Road
(Sharmshiver), Indore
Mob. : 9303221400, Ph. : 0731-4202843

क्र.	विषय / लेखक	पृष्ठ
1.	आदिवासी बच्चों के पोषण एवं स्वास्थ्य स्थिति का अध्ययन (म.प्र. के आलीराजपुर जिले के विषेष सन्दर्भ में) – संगीता कनेष.....	1
2.	आलीराजपुर जिले की जनजातीय महिला मतदाताओं की निर्वाचन में भागीदारी – दुर्गा चौहान.....	3
3.	बदलते परिवेश के साथ मीडिया का तकनीकी विकास तथा समाज पर उसका प्रभाव – डॉ. अन्जु मिश्रा.....	5
4.	तकनीकी से सुगम होता महिलाओं का जीवन – डॉ रेणुका उपाध्याय.....	9
5.	ई–परिवहन और प्रदूषण मुक्त समाज – डॉ. अकबर खान.....	10
6.	ज्ञान की सुपर शक्ति के रूप में भारत की भूमिका – डॉ. अर्चना गौर, अचिन्त गौर, श्रीमती रितु गौर.....	11
7.	छत्तीसगढ़ राज्य में रामनामी पंथ में महिलाओं की सामाजिक स्थिति का एक समाजषास्त्रीय अध्ययन – डॉ. श्रद्वा गिरोलकर एवं अश्विनी कुमार वैष्णव.....	13
8.	ग्रामीण समाज में प्रौद्योगिकी का अपराधिक परिवारों पर प्रभाव – नर्मदा भिन्डे.....	15
9.	ठोस अपषिष्ठ प्रबंधन चुनौतियाँ एवं अवसर – डॉ. ज्योति ढोले.....	16
10.	राजीव गाँधी जल प्रबंधन मिषन का ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक योगदान – डॉ. बी. एस. निगवाले.....	18
11.	स्मार्ट सीटी – चुनौतियाँ तथा संभावनाएँ – देवेन्द्रसिंह ठाकुर.....	20
12.	नगरीय केन्द्रों में जन संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव – डॉ. वीणा मिश्रा.....	23
13.	विद्यार्थियों के षैक्षणिक व्यवहार व समस्याऐं : एक समाजषास्त्रीय अध्ययन (ष्योपुर जनपद (म.प्र.) के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत सहरिया जनजाति के विद्यार्थियों के संदर्भ में) – डॉ. ललित उपाध्याय.....	24
14.	ग्रामीण समाज में महाविद्यालयीन छात्रों का समाजमाध्यम का उपयोग : एक अध्ययन (धुळे तहसील के संदर्भ में) – डॉ. सुनिल सिसोदे.....	28
15.	विज्ञान प्रौद्योगिकी और 21वीं सदी का समाज कलयुगी छलांग विवेकसंगत हो – डॉ. तृष्णा शुक्ला..	29
16.	मील जनजाति में सांस्कृतिक परिवर्तन और जनसंचार माध्यम (आलीराजपुर जिले के जोबट विकासखण्ड के सन्दर्भ में) – आशीष नीलकंठ.....	35
17.	भारत सरकार की एक अभिनव योजना व षिल विकास एवं तकनीक – डॉ निशा जैन.....	37
18.	वैज्ञानिक तकनीक व इनका विशिष्ट बालकों की शिक्षा में शैक्षिक प्रयोग – डॉ. रश्मि पण्ड्या.....	38

Scanned by TapScanner

	...	120
61.	आंचलिक कहानियों में सामाजिक जीवन का विशेष चित्रण – डॉ. रेखा नागर.....	
	...	121
62.	मालवा में राजपूत जाति का आगमन और उनकी जागीरदारी का स्वरुप – अंजली राठौड़.....	
	...	124
63.	आदिवासी टैटूस पर आधारित नमूनों का आधुनिक परिधानों में उपयुक्तता (ब्लॉक प्रिंटिंग थैली के संदर्भ में) – सोनिया हिरोड़कर.....	
	...	125
64.	जनजातीय महिलाओं के विकास में स्व–सहायता समूह का योगदान – संगीता खरे.....	
	...	127
65.	डॉ. वल्लभदास शाह 'विवेक्त' की कविताओं में सामाजिक संवेदना – श्रीमती अभिलाषा पाण्डे.....	129
66.	योग व शाकाहार जीवन का आधार – डॉ रंजू गुप्ता	131
67.	नर्मदा झाबुआ ग्रामीण बैंक गठन व विस्तार – गोपाल कुरील, डॉ. सुनील मोरे.....	132
68.	21वीं सदी के परिदृश्य में स्वास्थ्य एवं विकास–एक नजर–राजेश कुमार विछौलिया, डॉ. विजय कुमार गंभीर	134
69.	राजनीतिक दलों की महिला कार्यकताओं की सामाजिक परिवर्तन में भूमिका एक अध्ययन – डॉ. ईश्वर शशांक ठाकुर एवं राखी बाला सिंगारे.....	138
70.	भारत में 21 वीं सदी का विज्ञान व समाज – डॉ. दिनेष सिंह कुषवाह	140
71.	प्राचीन भारत में नारी षिक्षा – डॉ. शुक्ला ओझा	141
72.	जनसंचार साधनों का वैश्विक प्रभाव – डॉ. मधुलिका श्रीवास्तव, राकेष कुमार तिवारी	146
73.	21वीं सदी की चुनौतियां एवं सूचना प्रौद्योगिकी – प्रो. माधवीलता दुबे, डॉ. साधना सिंह बिसेन ...	148
74.	सायबर अपराध का समाज पर प्रभाव– एक समाजषास्त्रीय अध्ययन – डॉ. राकेष करहेरिया	150
75.	जनजातीय समुदायों में उत्सव–त्यौहार एवं रीतिरिवाज (पष्चिमी नेपाल की षौका जनजाति के सन्दर्भ में) – डॉ दिनेष व्यास	153
76.	स्मार्ट सिटी – ग्वालियर का सुनहरा भविष्य – डॉ. (श्रीमती) वसुधा अग्रवाल	156
77.	21वीं सदी के भारत में शिक्षा, सामाजिक असमानताओं में पिछड़ा वर्ग और दलित – डॉ. नरेन्द्र कुमार भास्कर, डॉ. राजेष श्रीवास	158
78.	आधुनिक प्रौद्योगिकी का बैगा जनजाति पर प्रभाव – डॉ. रचना श्रीवास्तव	162
79.	21 वी सदी में नई वैष्विक परमाणु स्पर्धा का सामाजिक सुरक्षा पर प्रभाव – डॉ. भांगे चंद्रकांत बन्सीधर	165
80.	आदिवासी साहित्य में विज्ञान एवं साहित्य का सामाजिक समन्वित परंपरा : एक अनुशीलन – लवन सिंह कंवर	167
81.	पर्यावरण संरक्षण में नैनोटेक्नोलॉजी के विधि अनुप्रयोग – डॉ. अंजली जोशी	171
82.	ज्यां बॉद्रिलार्ड का उत्तर–आधुनिक समाज – डॉ. तैयबा खातून	173
83.	'वरदान से संत्रास बनता नव विकास' 'मरंगगोड़ा नीलकण्ठ हुआ' के बहाने – डॉ. मनोज कुमार पंड्या	175
84.	वैज्ञानिक चेतना के प्रसार में प्रौद्योगिकी की भूमिका – डॉ. अलका रस्तोगी	176
85.	आदिवासी महिलाएँ – रीति रिवाज व चेतना गीत – डॉ. संध्या जैन	179
86.	भारत में नवीकरणीय ऊर्जा (सौर ऊर्जा) का बढ़ता महत्व – डॉ. संजय सोहनी, डॉ. बी.एल. पाटीदार	

आदिवासी साहित्य में विज्ञान एवं साहित्य का सामाजिक समन्वित परंपरा : एक अनुशीलन

लवन सिंह कंवर
सहायक प्राध्यापक, शासकीय राजमाता विजया राजे सिंधिया कन्या महाविद्यालय कवर्धा, जिला–कबीरधाम (छग.)

'साहित्य' 'सहित' शब्द से बना है, यानि –'साहितस्य भाव साहित्य' अर्थात साहित्य में हित की भावना होती है साथ ही मिलन का भाव भी होता है। आदिवासी समाज और साहित्य में नामि–नाल का रिश्ता है। दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं। समाज एक गतिशील प्रतिमान है फलस्वरूप इसमें परिवर्तन होते ही रहते हैं। समाज के समान ही संस्कृति एवं सभ्यता भी गतिशील होती है।

भारतीय साहित्य के सन्दर्भ में 20वीं सदी राष्ट्र को परिभाषित करने और राष्ट्र निर्माण की आधुनिक परियोजना को प्रस्तुत करने की थी लेकिन इस आधुनिक राष्ट्र, राज्य निर्माण में योगदान करने वाले बहुसंख्यक दलित–वंचित समुदाय आज भी हाशिए पर पड़े हुए हैं। 20वीं सदी के अन्तिम दशक से ही इन उपेक्षित तबकों की आवाजें हिन्दी साहित्य में गूंजने लगी थी। अब तक मूक रही इन आवाजों में से एक स्वर आदिवासियों का भी है। विमर्शों के कोलाहल में पहले तो इस आदिम आबादी का स्वर कहीं था ही नहीं लेकिन पिछले कुछ पाँच–दस सालों से आदिवासी साहित्य की हिन्दी में भी किंचित गम्भीरता से लेने लगे हैं। आदिवासी जीवन यथार्थ की गहन पड़ताल का दावा करने वाली साहित्यिक कृतियों में बहुधा अभिव्यक्ति के स्तर पर अवबोधनगत और निरूपण प्रणालीगत त्रुटियाँ पायी जाती हैं। अवबोधन के अन्तर्गत लेखक की सैद्धांतिक और वैचारिक समझ होती है जिसके तहत उसकी लेखनी प्रचलित शक्ति समीकरणों को स्वीकारते–नकारते और संशोधित करते हुए आदिवासी जीवन का चित्रण करती है।

साहित्य और समाजशास्त्र के परम्परागत औजार आज उपेक्षित समुदायों के दिन प्रतिदिन जटिल होते यथार्थ की प्रस्तुति भोथरे साबित हो रहे हैं। आदिवासी और गैर आदिवासी संस्कृतियों में निहित सांस्कृतिक अन्तराल की पहचान और इस विभेद का स्वीकार एवं चित्रण न केवल इसलिए अपेक्षित है कि समाज और संस्कृति बहुत जटिल विषय होते हैं अपितु यह इसलिए भी जरूरी है कि भिन्न–भिन्न संस्कृतियाँ यथार्थ के भिन्न–भिन्न आयामों की व्यंजक भी होती है। जेफरी सी.अलेक्जेण्डर 'कल्चर एंड सोसायटी: कंटेम्परारी डिबेट' में मानते हैं कि आत्मनिष्ठ अर्थों की उपेक्षा करके हम संस्कृति को नहीं समझ सकते और संरचनात्मक सामाजिक भिन्नताओं के संदर्भ भी इस दिशा में अपना महत्व रखते हैं। आदिवासी जीवन यथार्थ के चितेरे साहित्य में आदिवासी समाज का जो प्रतिबिंबन मिलता है, उसमें वर्तमान और अतीत के इस द्वन्द्व को चिन्हित करना जरूरी है। आदिवासियों के सांस्कृतिक मिथकों और सामाजिक रूढ़ियों को आधुनिक वैज्ञानिक युग में अप्रासंगिक और अज्ञानता का सूचक सिद्ध कर उनको नकारना या उनका उन्मूलन कर सभ्य समाज का लेखक अपनी प्रगतिशीलता का ढिंढोरा पीटता नहीं अघाता। लेखक और उसकी लेखनी से अभिव्यक्त होने वाले हाशिए (विषय) के अन्तर्संबंधों के बारे में कुमकुम यादव का कहना है कि दोनों के बीच के जटिल रिश्तों में व्यवहार्यता और स्वीकार्यता हेतु यह आवश्यक है कि उनका संवाद पारस्परिक सम्मान और गत्यात्मकता पर अवलंबित रहे और दोनों एक–दूसरे के आंशिक सत्यों को स्वीकार करें। साहित्य में भी कार्यरत आधारभूत भिन्नता की अवधारणा में 'हम' और 'वे' में विभाजित करके देखता है। वर्चस्वशील समूह से भिन्न सांस्कृतिक प्रतिमान रखने वालें आदिवासी जब भी अपनी आवाज उठाने का, बोलने का प्रयास करते हैं तब–तब उनकी न केवल उनकी आवाज को अनसुना कर दिया जाता है अपितु उन पर निष्क्रियता, रहस्मयता, वैरागी मानसिकता रखने और एकान्तवासी होने जैसे मिथ्या मिथक जड़ दिये जाते हैं। 'सभ्य और 'असभ्य' की परिभाषा भी पारस्परिक विरोधी युग्म की इसी मानसिकता के तहत दी जाती है जहाँ विपक्षी को नकारकर स्वयं को परिभाषित करना होता है। पश्चिम का शास्त्रीय साहित्य वन देवताओं, परियों और लंपट शैतानों के काल्पनिक चित्रणों के माध्यम से आदिम मानव को कामुकता और वासना के कीच में धँसा दिखाता है। ईसाई धर्म चिंतक इस आदिम मनुष्य को बुतपरस्त और बर्बर घोषित करते थे जबकि स्वच्छंदतावादी साहित्य में आदिवासियों को अबोध बच्चों सरीखा नितांत भोलाभाला दिखाया गया है। विक्टोरियन साहित्य में आदिम मनुष्य और प्रकृति के बीच अटूट रिश्ता दिखाया गया है। भारतीय मिथकों में भौगोलिक दृष्टि से जंगलों और कंदराओं के वासी परिधि पर ही रहे हैं। जहाँ कहीं उनके आदिम रिवाजों, संस्कारों और स्वाभिमान का जिक्र आया है, वहाँ उन्हें किसी निर्वासित राजा–रानी या राजकुमार–राजकुमारी की आँखों से चित्रित किया गया है। प्रकृति–प्रेमी ये आदि मानव प्रायः अधनंगे से रहते हैं और कुछ आदिवासी ऊपरी भाग में कुछ भी नहीं धारण करते। अतः शहरी जनमानस कभी–कभी उनको अपनी विलासिता की आग में सिक्त करता नजर आता है। ऐसे समय में अज्ञेय की पंक्तियाँ उद्भूत होती सी नजर आती हैं–

"साँप तुम शहर में तो रहे नहीं
हँसना सीखा कहाँ से।"

आदिवासी समाज में भी पुरूष जाति पितृसत्तात्मक के कारण आदिवासी स्त्री भी दबी–सहमी और शोषित और कुंठाग्रस्त दिखायी देती है। वह जानती हैं कि समाज उसे प्रेम के नाम पर किस तरह छलता है, सदाचरण के चश्मे के भीतर से किन नजरों से देखता है–

"मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में,
मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने,
जंगल के फूल,फल, लकड़ियाँ,
खेतों में उगी सब्जियाँ,घर की मुर्गियाँ,
उन्हें प्रिय है मेरी गदराई देह,
मेरा मांस प्रिय है उन्हें।"

भारतीय साहित्य में उच्च वर्ग और अभिजात्य संस्कृति के निर्धारित लोग आदिवासियों से सहानुभूति रखते तो है किंतु आदिवासी के रूप में न देखकर वनवासी के रूप में ही देखते हैं। आधुनिक समय में अभिव्यक्ति के जटिल रूप सामने आ रहे हैं जिनमें पूर्ववर्ती पूर्वाग्रह तो हाशिए के समुदायों के प्रति विद्यमान हैं किन्तु उनके चित्रण में तब्दीली आ गयी है।

एक ऐसा समाज जिसका वजूद वेदों और पुराणों में दर्ज है लेकिन आज यही सबसे ज्यादा हाशिए का शिकार है। ऐसे समाज का नाम है आदिवासी समाज जिसे न तो उचित अपनी स्थान वेदों–पुराणों में मिला और न ही इतिहास के पन्नों में। अगर उसे कहीं दर्ज भी किया गया तो मात्र मिथकों के माध्यम जिसमें उसे असुर, राक्षस, पिशाच और न जाने किन–किन नामों से पुकारा गया। 'ग्लोबल गाँव' के देवता में रूनझुन कहती हैं– "हमारी जाति विनाश की एक झलक मात्र है इस कहानी में। .....केवल लोक कथाओं में हम जिन्दा हैं।" अब जहाँ तक सवाल समकालीन आदिवासी कालों के बीच जो आदिवासी समाज के हित के लिए उनकी अस्मिता और जल, जंगल, जमीन की बात को उठाया गया, वह आज वर्तमान में एक बहुत बड़े मुददे के रूप में तब्दील हो चुका है। महादेव टोप्पो कविता 'जंगल का कवि' में लिखते हैं–

"जब जंगल को
सारी विद्रोही आवाजों को
जंगल के पेड़ों के हरेपन को
हरे–भरे होकर सीना तान
पहाड़ों पर घाटियों में
उगने लहराने की
उनकी आकांक्षा को महुए की बोतल में
डुबोने की हो साजिश
इस जंगल का कवि
रहेगा भला कैसे चुप ?।"

स्वतंत्रता के पश्चात् से वर्तमान आदिवासी कविताओं में भी भूमण्डलीकरण के संबंध में भी विरोधी तेवर सुनाई पड़ते हैं। औद्योगीकरण की तेज प्रकिया से देश में तकनीकीकरण की अंधी दौड़ में हम आगे तो बढ़ गये किन्तु आदिवासियों पर इसका प्रभाव जनसंहार के रूप में पड़ा है। अशोक सिंह इसकी अभिव्यक्ति अपनी कविता 'संताल परगना का दुख' कविता में करते हैं–

"अब अखाड़ा व चौपालों का सूनापन बजता है यहाँ"
क्योंकि,
जंगल के साथ कम पड़ते जा रहे हैं जंगल के लोग
बढ़ती जा रही है संख्या दिनोंदिन बाहरी लोगों की
पसरते जा रहे हैं कंकीट के जंगल
उग रहे हैं कूड़े करकट और पथरीली धूल से बने
नित नये दुखों के कृत्रिम पहाड़।"

एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले साठ सालों से औद्योगीकरण की वजह से जो कार्य हुए हैं वो भी आदिवासियों के लिए विस्थापन के कारण निरर्थक ही साबित हुए हैं। जिस पर कवि सपाट रूप से कहता है–

"जहाँ प्यासे हैं वहाँ नहीं
उसके यहाँ कुआँ खुद रहा है जहाँ प्यासे नहीं हैं
और बन रहे हैं पुल वहाँ जहाँ पुल की जरूरत नहीं
बनी हुई सड़कों पर सड़कें और खुदे हुए तालाबों को खोदकर तालाब
आखिर किस विकास का आंकड़ा दिखा रही है सरकार।"

हिन्दी साहित्य में विमर्शों के लिए विख्यात पिछली शताब्दी के अन्त में आदिवासी स्वर शामिल हुआ है. हिन्दी के आदिवासी लेखकों में निर्मला पुतुल, वाहरू सोनकर, अनुज लुगंन, हरिराम मीणा, केदार नाथ मीणा आदि प्रमुख है। आदिवासी समाज की अपनी बोली–भाषा है,जिसमें मौखिक आधार पर लोकगीत, लोककथाएँ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि आज भी इस समाज में प्रचलित है। जहाँ आदिवासियों ने अपने आत्मनिर्भर जीवन को लोकगीतों के मधुरिम माध्यम से सँजोया है। इन्हीं दुख–दर्द की लय में सन्निहित अनायास आनंद की अनुभूति पर जीवन्त लोक साहित्य के समाज का

इतिहास मूर्तिमान हो उठता है। आदिवासी लोक जीवन का सामाजिक–सॉस्कृतिक व वैज्ञानिक अध्ययन इन्हीं आदिवासी साहित्यों पर आधारित है।

संदर्भ:–

1.प्रमोद मीणा,'आदिवासी साहित्यः सृजन की दुश्वारियॉं',डॉ.अनुशब्द(संपादक),लोक और शास्त्र जनजातीय साहित्य, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली–110002

2 सुरेश पवार,'बंजारा जनजाति',डॉ.अनुशब्द(संपादक),लोक और शास्त्र जनजातीय साहित्य, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली–110002

3.डॉ. सी.एल.धिमान,'हमारा आदिवासी जीवन',डॉ.अनुशब्द(संपादक),लोक और शास्त्र जनजातीय साहित्य, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली–110002

4 गजेन्द भारद्वाज,'लोक संस्कृति के संवाहक आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों में नारी की स्थिति',डॉ.अनुशब्द(संपादक), लोक और शास्त्र जनजातीय साहित्य, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली–110002

5 ऋतिका गुप्ता,'हिन्दी की दलित और आदिवासी कविताओं पर भूमण्डलीकरण का प्रभाव',डॉ.अनुशब्द(संपादक),लोक और शास्त्र जनजातीय साहित्य, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली–110002

6.रवि कुमार गौड,'समकालीन विमर्श और आदिवासी समाज',डॉ.अनुशब्द(संपादक),लोक और शास्त्र जनजातीय साहित्य, वाणी प्रकाशन,नयी दिल्ली–110002